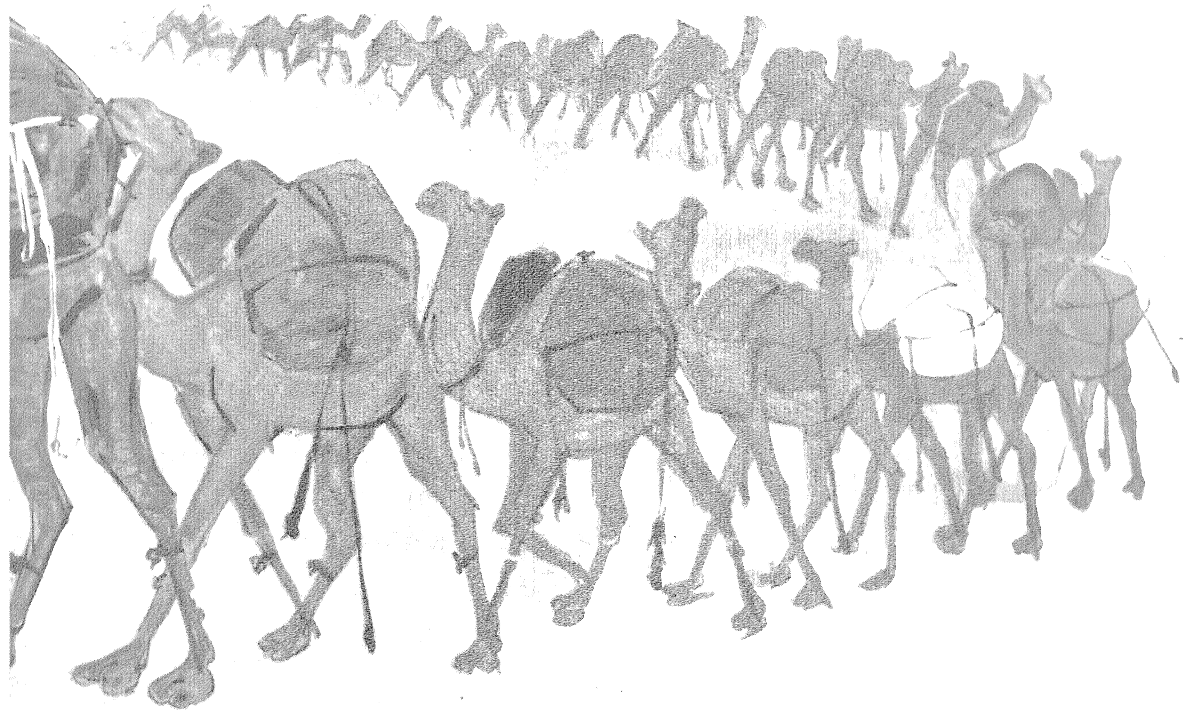
भारत की
लोक कथा निधि
भाग एक



लेखक—शंकर
चित्रकार—देवब्रत मुकर्जी

अनुक्रम

प्रथम संस्करण : 1967
पुनर्मुद्रित : सितम्बर 1971, नवम्बर 1977, जुलाई 1980, सितम्बर 1982

चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और इन्द्रप्रस्थ प्रेस, नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

हमारी मातृभूमि, जिसे हम भारत माता भी कहते हैं, एक दादी की तरह हैं। बहुत बूढ़ी और उतनी ही समझदार। उन्हें सैकड़ों कहानियां आती हैं। हमारी दादी कहती हैं कि बड़ी-बड़ी पोथियां सबके काम की नहीं होतीं। लेकिन उन पोथियों में जो अक्लमन्दी की बातें हैं वे कहानियों की मदद से जल्दी समझ में आ जाती हैं।

ऐसी कहानियों को लोककथा कहते हैं। ये कथाएं इतनी पुरानी हैं कि कोई भी नहीं बता सकता कि उन्हें पहले-पहल किसने कहा होगा। लोककथाएं एक कान से दूसरे कान में, एक देश से दूसरे देश में जाती रहती हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने पर इन कथाओं का रूपरंग भी बदलता जाता है। एक ही कहानी अलग-अलग जगहों में अलग-अलग ढंग से कही-सुनी जाती है। इस तरह लोककथाएं हमेशा नयी बनी रहती हैं।

भारत में दुनिया के किसी भी देश से ज्यादा लोककथाएं हैं। इनमें से बहुत-सी कथाएं एक मोटी पोथी में जमा की गयी हैं। उस पोथी का नाम है, कथा-सरित्सागर। यानी 'कथाओं की नदियों से बना हुआ सागर'!

अच्छी कथाएं मूल्यवान वस्तुओं की तरह होती हैं और मूल्यवान वस्तुओं को सुरक्षित जगह पर ही रक्खा जाता है। ऐसी सुरक्षित जगह 'निधि' कहलाती है। इसलिए अच्छी-अच्छी कथाओं की पुस्तक भी एक प्रकार की निधि है। प्रस्तुत पुस्तक 'भारत की लोककथा निधि' का पहला भाग है। इसके कम से कम, सात और भाग भी जल्द ही प्रकाशित किये जायेंगे।

हिमशुक

बहुत समय पहले अवध में एक राजा राज्य करता था। उसके तीन लड़के थे। तीनों बहुत पढ़े-लिखे, बुद्धिमान और गुणी थे।

एक दिन राजा ने अपने तीनों राजकुमारों को परीक्षा लेने के लिए बुलाया। वह यह जानना चाहता था कि किसी दोषी को सजा देने के मामले में उन तीनों के क्या विचार हैं।

"मान लो," उसने कहा, "अगर मैं अपने जीवन और सम्मान की रक्षा की जिम्मेदारी किसी आदमी को सौंपूं और वह विश्वासघाती निकले तो उसे क्या सजा दी जानी चाहिए ?"

सबसे बड़े लड़के ने कहा, "ऐसे आदमी की गर्दन फौरन धड़ से जुदाकर देनी चाहिए।"



दूसरे लड़के ने कहा, "मेरा भी यही विचार है। ऐसे ग्रादमी को मृत्युदण्ड ही मिलना चाहिए। उसके साथ किसी तरह की दया-माया नहीं दिखायी जानी चाहिए।"

तीसरा लड़का चुप बैठा रहा।

"क्या बात है, मेरे बेटे ?" राजा ने उससे पूछा, "तुम कुछ नहीं बोले, तुम्हारा क्या विचार है ?"

"महाराज," छोटे राजकुमार ने कहा, "यह सच है कि ऐसे कुसूर की सजा मौत के सिवा ग्रौर कुछ नहीं हो सकती। लेकिन सजा देने से पहले यह बात साफ-साफ ग्रौर पूरी तरह से साबित हो जानी चाहिए कि वह सचमुच ही दोषी है।"





"यानी, तुम्हारे विचार से ऐसा न किया गया तो निर्दोष आदमी भी मारा जा सकता है ।" राजा ने पूछा ।

"हां," राजकुमार ने जवाब दिया, "ऐसा हो सकता है । उदाहरण के लिए मैं आपको एक कहानी सुनाता हूं ।"

ऐसा कहकर राजकुमार ने यह कहानी सुनायी ।

विदर्भ देश के राजा के पास एक अनोखा तोता था । उस तोते का नाम हिमशुक था । वह महल में पालतू पक्षी की तरह रहता था । हिमशुक बड़ा चतुर था । वह कई भाषाओं में बात कर सकता था । बुद्धिमान इतना था कि अक्सर राजा भी महत्वपूर्ण मामलों में उसकी राय लिया करता था ।

हिमशुक पिंजड़े में नहीं रहता था । वह अपनी इच्छा के अनुसार आजादी से घूमता रहता था । एक दिन सवेरे वह महल से उड़कर जंगल की ओर निकल गया । वहां संयोग से उसकी भेंट अपने पिता से हो गयी ।

"तुमसे मिलकर मैं कितना प्रसन्न हुआ हूं," उसके पिता ने कहा, "तुम्हारी मां भी तुमसे मिलकर इतनी ही प्रसन्न होती । क्या तुम दो-चार दिन के लिए घर नहीं आ सकते ?"

"घर आने की तो मुझे भी बड़ी इच्छा थी," हिमशुक ने कहा, "मगर इसके लिए मुझे राजा से अनुमति लेनी पड़ेगी ।"

महल वापस आकर हिमशुक ने राजा से घर जाने की आज्ञा मांगी। शुरू में तो राजा उसे जाने देने के लिए राजी नहीं हुआ। वह हिमशुक को बहुत मानता था और अपने से अलग नहीं करना चाहता था। पर अन्त में वह मान गया। उसने हिमशुक को घर जाने की अनुमति दे ही दी।

"तुम घर जाकर अपने मां-बाप के साथ कुछ दिन बिता सकते हो," राजा ने हिमशुक से कहा, "लेकिन जितनी जल्दी हो सके लौट आना।"

"बहुत अच्छा महाराज," हिमशुक ने खुश होकर कहा, "मैं पन्द्रह दिन बाद वापस आ जाऊंगा।"

इसके बाद हिमशुक अपने पिता के पास गया और वे दोनों, साथ-साथ उड़ते हुए, घर की ओर रवाना हुए। इतने वर्षों बाद अपने प्यारे बेटे हिमशुक को देखकर उसकी मां बहुत खुश हुई।

एक पखवाड़े तक अपने मां-बाप के साथ रहने के बाद हिमशुक ने उनसे कहा, "मेरे ये दिन अपने प्रियजनों के साथ बड़े ही सुख से बीते हैं, मगर अब मुझे जाना होगा। राजा मेरी राह देख रहे होंगे।"

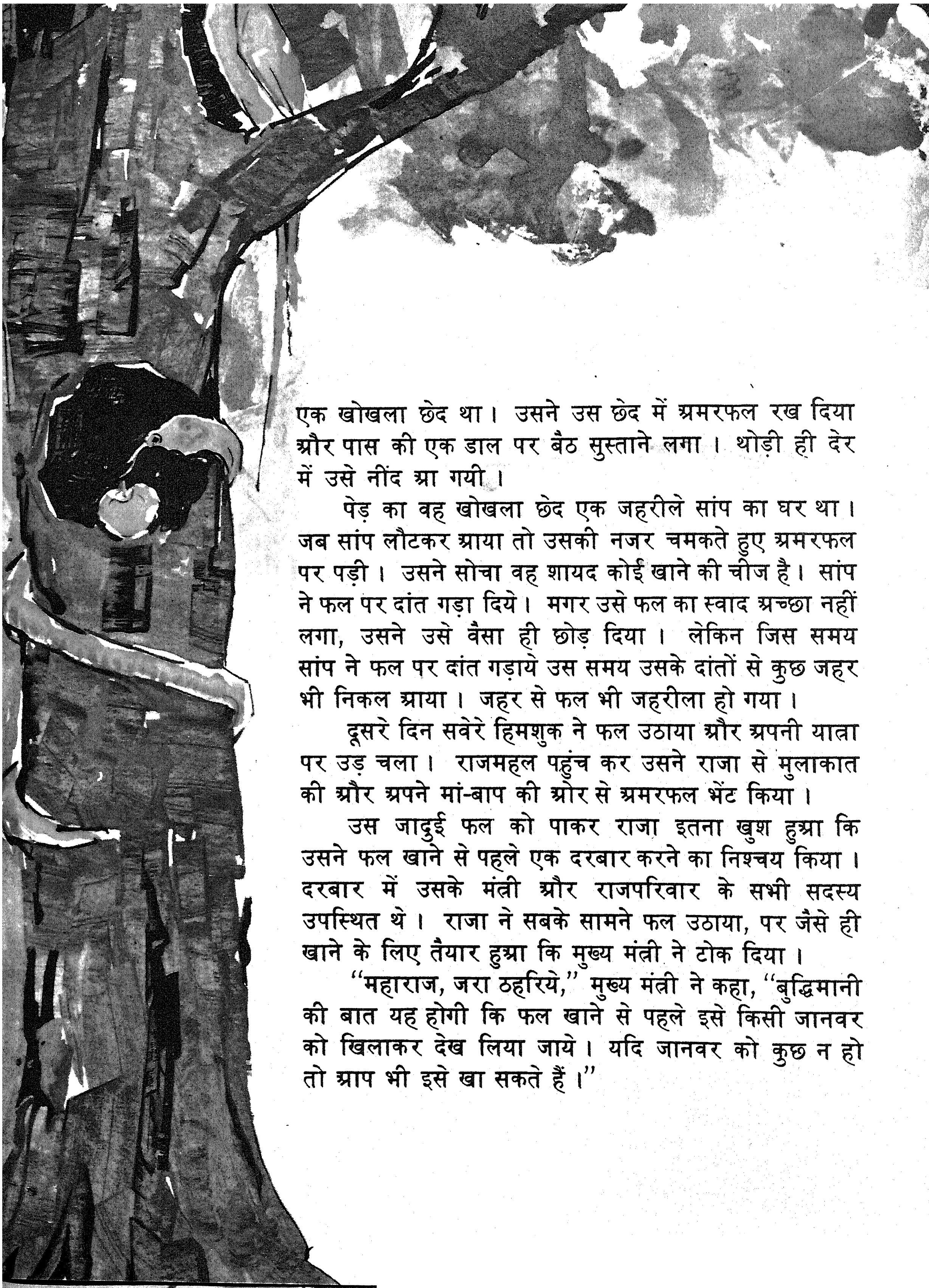
हिमशुक के मां-बाप उसके इतनी जल्दी जाने की बात सुनकर उदास हो गये। परन्तु वे उसे रोक नहीं सके। हिमशुक ने राजा से वादा किया था कि वह पन्द्रह दिन के बाद लौट आयेगा।

"हम राजा के लिए कोई उपहार भिजवाना चाहते हैं," हिमशुक के पिता ने कहा, "लेकिन समझ में नहीं आता कि कौन सी चीज भिजवायें।"

हिमशुक के माता और पिता दोनों ही इस बात पर विचार करने लगे कि राजा को देने लायक उपहार क्या हो सकता है? कुछ देर सोचने के बाद हिमशुक के पिता ने कहा, "अहा, मैं समझ गया कि राजा के लिए सबसे अच्छा उपहार क्या हो सकता है। यहां से दूर एक पहाड़ी पर अमरफल का पेड़ है। जो कोई उसका फल खा लेता है वह कभी नहीं मरता और हमेशा जवान रहता है। मैं वहां जाकर एक फल तोड़ लाता हूं। तुम वह फल राजा को दे देना।"

इतना कहकर हिमशुक का पिता उड़ा और कुछ समय बाद जादुई अमरफल लेकर लौट आया। उसने वह फल हिमशुक को दे दिया।

फल लेकर जब हिमशुक राजा के महल की ओर रवाना हुआ तो शाम हो चली थी। थोड़ी ही देर में सूरज डूब गया और चारों ओर रात का घना अन्धकार छा गया। हिमशुक ने किसी पेड़ की डाल पर बैठकर रात काटने का इरादा किया। मगर इससे पहले वह उस कीमती फल को किसी सुरक्षित स्थान में रखना चाहता था। किस्मत से उसे एक ऐसा पेड़ मिल गया जिसके तने में



एक खोखला छेद था। उसने उस छेद में अमरफल रख दिया और पास की एक डाल पर बैठ सुस्ताने लगा। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गयी।

पेड़ का वह खोखला छेद एक जहरीले सांप का घर था। जब सांप लौटकर आया तो उसकी नजर चमकते हुए अमरफल पर पड़ी। उसने सोचा वह शायद कोई खाने की चीज है। सांप ने फल पर दांत गड़ा दिये। मगर उसे फल का स्वाद अच्छा नहीं लगा, उसने उसे वैसा ही छोड़ दिया। लेकिन जिस समय सांप ने फल पर दांत गड़ाये उस समय उसके दांतों से कुछ जहर भी निकल आया। जहर से फल भी जहरीला हो गया।

दूसरे दिन सवेरे हिमशुक ने फल उठाया और अपनी यात्रा पर उड़ चला। राजमहल पहुंच कर उसने राजा से मुलाकात की और अपने मां-बाप की ओर से अमरफल भेंट किया।

उस जादुई फल को पाकर राजा इतना खुश हुआ कि उसने फल खाने से पहले एक दरबार करने का निश्चय किया। दरबार में उसके मंत्री और राजपरिवार के सभी सदस्य उपस्थित थे। राजा ने सबके सामने फल उठाया, पर जैसे ही खाने के लिए तैयार हुआ कि मुख्य मंत्री ने टोक दिया।

"महाराज, जरा ठहरिये," मुख्य मंत्री ने कहा, "बुद्धिमानी की बात यह होगी कि फल खाने से पहले इसे किसी जानवर को खिलाकर देख लिया जाये। यदि जानवर को कुछ न हो तो आप भी इसे खा सकते हैं।"



"सुझाव बहुत अच्छा है," राजा ने कहा। उसने फल काटा और एक छोटा सा टुकड़ा एक कौवे की ओर फेंक दिया।

कौवे ने फल खाया और खाते ही मर गया।

"महाराज," मंत्री ने कहा, "आज आप बाल-बाल बचे हैं। फल जहरीला है। यह अमरफल नहीं मृत्युफल है। इससे यह भी जाहिर है कि फल खिलाकर हिमशुक आपको मारना चाहता था।"

राजा गुस्से के मारे आगबबूला हो गया। उसने लपक कर हिमशुक को पकड़ा और बिना सोचे समझे



उसकी गर्दन उड़ादी। इसके बाद उसने हुक्म दिया कि उस जहरीले फल को नगर के बाहर एक गहरे खड्ड में दबा दिया जाये।

फल जमीन में दफना दिया गया। मगर कुछ ही समय बाद उसका बीज अंकुरित होकर बढ़ने लगा और बढ़ते-बढ़ते पूरा पेड़ बन गया। कुछ समय बाद उस पेड़ में बड़े ही सुन्दर, चमकीले, सुनहरे फल लग आये।

जब राजा ने उस विचित्र पेड़ के बारे में सुना तो उसने कहा, "वे फल जहरीले हैं, मौत के फल हैं।"

राजा ने हुक्म दिया कि उस पेड़ के चारों ओर एक बाड़ बना दी जाय और हर समय पेड़ की रखवाली की जाय ताकि कोई भी उन जहरीले फलों को न खा सके। मृत्युफल की खबर सारे शहर में फैल गयी। जनता को उस पेड़ के पास फटकने में भी डर लगने लगा।

उन्हीं दिनों उस शहर में एक बूढ़ा और उसकी बुढ़िया रहते थे। वे बहुत गरीब थे। उनका कोई मददगार भी नहीं था। वे किसी तरह दूसरों की मेहरबानी पर गुजर कर रहे थे। बुढ़ापे के मारे वे इतने कमजोर और असहाय हो गये थे कि भीख मांगने भी नहीं जा सकते थे। अक्सर फाके करते रहने से उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि अब जीना बेकार है। दोनों ने सोचा कि ऐसी जिन्दगी की बजाय मर जाना कहीं अच्छा है। मरने के लिए सबसे अच्छा यही था कि पेड़ के जहरीले फल खा लिये जायें।

एक रात बूढ़ा चुपके से पेड़ के पास गया और पहरेदार की नजर बचा कर बाड़े के अन्दर घुस गया। उसने पेड़ से दो फल तोड़े और उन्हें लेकर सीधे घर पहुंचा। घर पहुंचकर उसने और उसकी बुढ़िया दोनों ने एक-एक फल खा लिया। इसके बाद वे तुरन्त मरने की आशा से बिस्तर पर लेट गये।

लेकिन दूसरे दिन सवेरे रोज की तरह उनकी आंखें फिर खुल गयीं। अपने आपको जिन्दा पाकर उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ। इससे भी बड़ा ताज्जुब तो यह था कि वे दोनों जवान हो गये थे। उनकी पहले की चुस्ती और ताकत भी लौट आयी थी।

राजा ने यह अनोखी बात सुनी तो वह भी उन दोनों को देखने गया। उन्हें सचमुच ही जवान देखकर वह दंग रह गया। अब जाकर उसकी समझ में आया





कि हिमशुक जो फल लाया था वह ग्रसली ग्रमरफल था। उसे ग्रपनी जल्दबाजी पर, ग्रपने प्यारे तोते को बेकुसूर मारने पर बेहद ग्रफसोस होने लगा।

"इसीलिए मैं कहता हूं," छोटे राजकुमार ने ग्रागे कहा, "कि किसी को सजा देने से पहले इस बात का पूरा-पूरा पता लगा लेना जरूरी है कि वह सचमुच ग्रपराधी है या नहीं।"

राजा ग्रपने तीसरे लड़के की बातें सुनकर इतना प्रसन्न हुग्रा कि उसने उसे युवराज यानी ग्रपना उत्तराधिकारी बना लिया।

प्रियम और कछुवा

कीर्तिगढ़ के ठाकुर की इकलौती लड़की प्रियम बहुत ही सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता की ख्याति देश-विदेशों तक फैली हुई थी। मगर प्रियम बड़ी ही घमण्डी और हठीली लड़की थी।

एक दिन वह बाग में अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी। खेल ही खेल में उसकी एक सहेली ने कहा, "प्रियम, सुना है कि तुम्हारी शादी कछुवा से होनेवाली है। होने वाली है न?"

अब कौन नहीं जानता कि कछुवा कैसा जानवर होता है? प्रियम ने सोचा जिसका नाम ही कछुवा है वह कितना बदसूरत होगा।



"कछुवा ?" उसने गुस्से से नाक सिकोड़ कर कहा, "कैसी बेहूदी बात करती हो ! तुमसे कह किसने दिया कि मैं उस बदसूरत आदमी से शादी करूंगी ।"

प्रियम जानती थी कि उसकी सहेली का मतलब जूनागढ़ के राजकुमार से था । मगर उसने राजकुमार को देखा नहीं था । उसका असली नाम हम्मीर था और 'कछुवा' घर में पुकारने का नाम था । प्रियम को पक्का यकीन था कि वह बदसूरत ही होगा, वरना उसका नाम कछुवा क्यों रखा जाता ।



प्रियम की सहेलियों ने कछुवा के बारे में कई और बातें बताने की कोशिश की, लेकिन उसने उनकी बात सुनी ही नहीं । जिसका नाम ही कछुवा है वह थोड़ा-बहुत कछुवा जैसा जरूर ही दिखाई देता होगा। प्रियम ने समझा कि उसकी सहेलियां हंसी उड़ाने को कह रही होंगी । उसने तो अपनी तरफ से पक्का निश्चय कर लिया था कि वह कछुवा से किसी हालत में शादी नहीं करेगी ।

"मेरे सामने उसका जिक्र भी न करो," उसने अपनी सहेलियों से कहा "मैं उसके बारे में कुछ नहीं सुनना चाहती ।"

इसके कुछ ही दिन बाद प्रियम की मां ने उसे बुलाकर कहा, "अब हम जल्दी से तुम्हारी शादी करने वाले हैं, तुम्हारी शादी कछुवा से होगी।"

"नहीं मां," प्रियम ने कहा, "मैं कछुवा के साथ शादी नहीं करूंगी । कभी नहीं करूंगी ।"

"यह कैसे हो सकता है? तुम्हें शादी करनी पड़ेगी। तुम जानती नहीं कि तुम्हारी और उसकी शादी वर्षों पहले तय हो चुकी है। अब तुम इनकार नहीं कर सकती।"

"मैं नहीं जानती," प्रियम ने कहा, "मैं उसके साथ शादी करना नहीं चाहती। मेहरबानी करके पिता जी से कह देना कि वे कछुवा से शादी करने के लिए मुझ पर जोर न डालें।"

"तुम मेरी बात तो सुनो बेटी," उसकी मां ने कहा, "उसके माता-पिता और हमने मिलकर ही यह शादी तय की थी, अब तो हम वचन हार चुके हैं।"

"तब आप मुझसे पूछ ही क्यों रही हैं," यह कहकर वह रोने लगी।

प्रियम अपने मां-बाप की इकलौती बेटी थी। वे उसे दुखी नहीं देख सकते थे। उसके पिता ने जूनागढ़ के राजा को सन्देशा कह भिजवाया कि उनकी लड़की कछुवा से शादी नहीं करना चाहती, इसलिए सगाई तोड़ी जा रही है।

सन्देशा सुनकर जूनागढ़ का राजा मारे गुस्से के बौखला उठा। उसने गुपचुप छानबीन करवायी तो मालूम पड़ा कि राजकुमारी शादी करने से सिर्फ इसलिए इनकार कर रही है कि उसे 'कछुवा' नाम पसन्द नहीं। जूनागढ़ का राजा प्रियम से भी ज्यादा जिद्दी था। उसने तय किया कि कछुवा की शादी किसी न किसी उपाय से प्रियम से ही की जायेगी।

"मैं देखूंगा," उसने कसम खाते हुए कहा, "उस घमण्डी लड़की को मेरे ही लड़के से शादी करनी पड़ेगी।"

इसके कुछ ही दिन बाद जूनागढ़ के राजा ने राजकुमार के ब्याह की तैयारियां शुरू कर दीं। दूर और नजदीक सब देशों के राजाओं के पास सन्देशे भेजे गये कि जूनागढ़ के राजा के राजकुमार की शादी होनेवाली है, सब उसमें शामिल हों।

दो चार दिन बाद शहर से राजकुमार की शानदार बारात निकली और कीर्तिगढ़ की राजधानी सोरठ की ओर चल पड़ी। तुरही और नगाड़ों की कर्णभेदी आवाज के साथ बारात ने नगर में प्रवेश किया। नगर के सब लोग अपना काम-धन्धा छोड़कर, बारात देखने सड़कों पर निकल आये। उन्होंने ऐसी शानदार बारात पहले कभी नहीं देखी थी।

उस समय प्रियम अपनी सहेलियों के साथ बागीचे में थी। उनमें से किसी को भी उस शानदार बारात के बारे में कुछ पता नहीं था। तभी एक सहेली दौड़ती हुई आयी और बोली, "राजकुमारी प्रियम, तुमने खबर नहीं सुनी?"

"नहीं," राजकुमारी ने कहा, "कौन सी खबर?"

"तुमने कछुवा से शादी करने से इनकार कर दिया था ना? अब उसके पिता



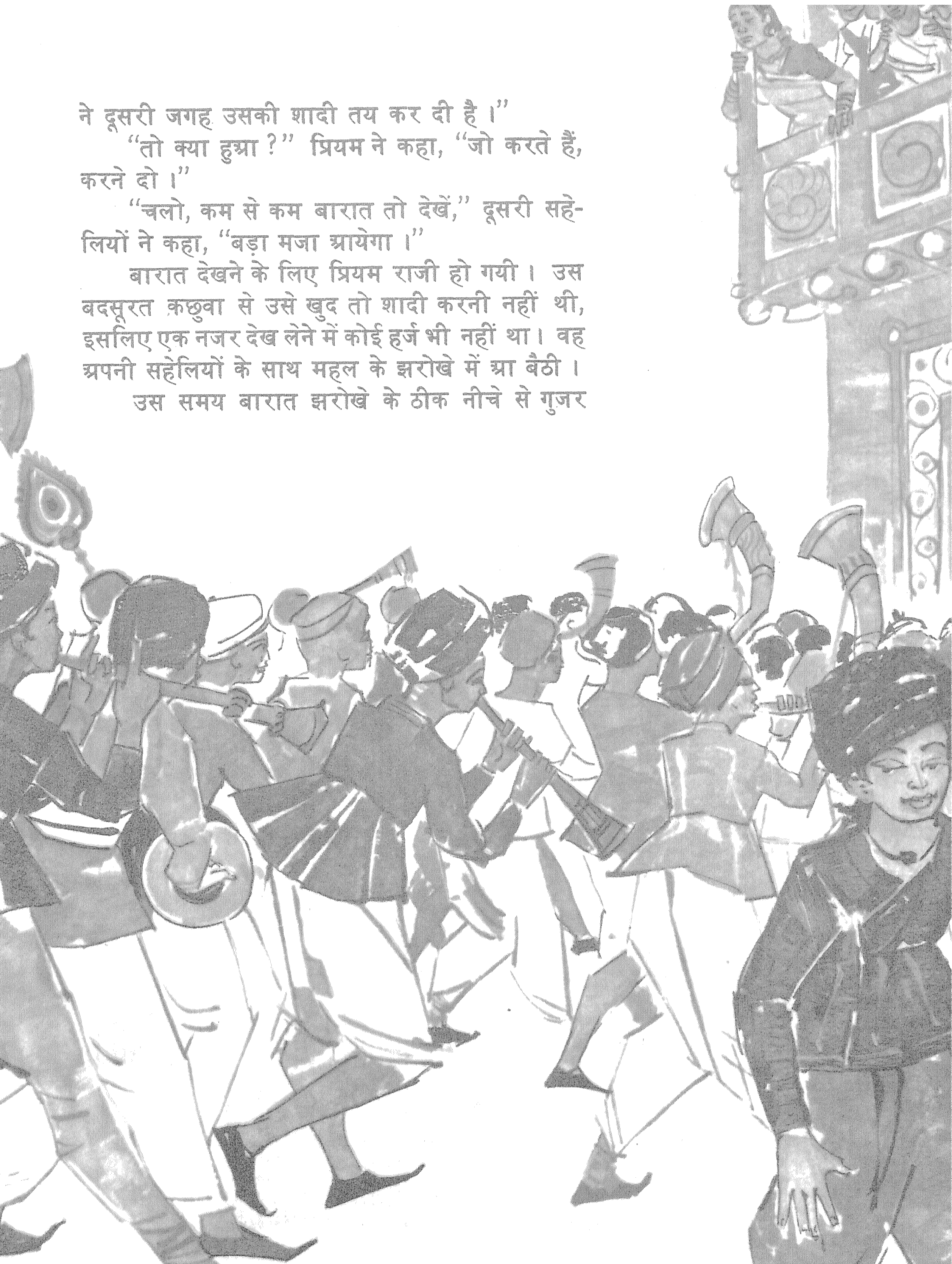
ने दूसरी जगह उसकी शादी तय कर दी है।"

"तो क्या हुआ ?" प्रियम ने कहा, "जो करते हैं, करने दो।"

"चलो, कम से कम बारात तो देखें," दूसरी सहेलियों ने कहा, "बड़ा मजा आयेगा।"

बारात देखने के लिए प्रियम राजी हो गयी। उस बदसूरत कछुवा से उसे खुद तो शादी करनी नहीं थी, इसलिए एक नजर देख लेने में कोई हर्ज भी नहीं था। वह अपनी सहेलियों के साथ महल के झरोखे में आ बैठी।

उस समय बारात झरोखे के ठीक नीचे से गुज़र







रही थी। बारात के आगे सफेद, सजे घोड़े पर एक लम्बा, सुदर्शन युवक सवार था। उसके कपड़े बड़े ही सुन्दर और कीमती थे। सारी जनता उसी की ओर निहार रही थी।

"कितना सुन्दर है," लोग कह रहे थे, "देवता जैसा दिखायी देता है।"

"कछुवा कहां है?" राजकुमारी प्रियम ने पूछा।

"वह है," उसकी सहेलियों ने कहा, "वह सफेद घोड़े पर सवार कछुवा ही तो है।"

प्रियम को अपनी ही देखी बात पर यकीन न आया। "यह कछुवा नहीं हो सकता," उसने अपने आप से कहा, "इसमें तो कछुवे जैसा कुछ भी नहीं है। यह तो इतना सुन्दर है इतना कि ऐसा आदमी मैंने जीवन में कभी देखा ही नहीं।"

अब प्रियम परेशान हो गयी। उसे अपनी सगाई तोड़ देने का पछतावा होने लगा। "हे भगवान," उसने सोचा, "मैंने इतने सुन्दर-सुदर्शन आदमी का अपमान किया।" अब क्या हो? वह अपनी गलती सुधारे तो कैसे? उसने तुरन्त फैसला किया कि खुद ही उसके पास जा कर अपनी गलती स्वीकार कर ली जाये।

प्रियम झरोखे से उठी और दौड़ती हुई सड़क पर जा पहुंची। गर्वीली राजकुमारी को सड़क पर यों दौड़ते देख लोग चक्कर में पड़ गये। लोगों ने उसके लिए रास्ता छोड़ दिया। वह

राजकुमार को पुकारती हुई उसके घोड़े की ओर भागती गयी।

"तुम कौन हो?" प्रियम के पास आने पर राजकुमार कछुवा ने पूछा।

"मैं प्रियम हूं, कीर्तिगढ़ के ठाकुर की लड़की," राजकुमारी ने कहा।

"ओहो, तो प्रियम आप हैं, मेहरबानी करके जरा एक तरफ को हो जाइये, वरना कहीं घोड़े से ठोकर लग जायेगी। मैं शादी करने जा रहा हूं इसलिए जरा जल्दी में हूं।"

"शादी करने? यह नहीं हो सकता, आप किससे शादी करने जा रहे हैं? आपकी सगाई तो बचपन से ही मेरे साथ हो गयी थी। मैं ही आपकी दूल्हन हूं।"

"गलत, बिल्कुल गलत, वह सगाई तो टूट गयी, और याद है? आप ही ने तोड़ी भी थी," कछुवा ने मुस्करा कर, राजकुमारी को चिढ़ाते हुए कहा।

"वह मेरी भूल थी, भारी भूल," प्रियम ने कहा, "मैंने सगाई इसलिए तोड़ी थी कि···कि मैंने···।" इसके आगे वह कुछ नहीं बोल सकी। उसका गला रुंध गया और वह सुबक-सुबक कर रोने लगी।

"मैं जानता हूं, जानता हूं," कछुवा ने कहा, "तुम मेरे नाम के कारण मुझसे शादी करना नहीं चाहती थी। लेकिन भला नाम से क्या होता है," उसे प्रियम को चिढ़ाने में आनन्द आने लगा था। पर मन ही मन वह खुश था कि राजकुमारी ने अपनी गलती मान ली है।

"पर देखिये ना," प्रियम ने रोते-रोते कहा, "नाम से भी होता, बहुत कुछ होता है। कछुवा नाम सुनकर ऐसा लगता है जैसे कोई बड़ा, काला-काला सा बदसूरत जन्तु हो। मगर हम्मीर कहना कितना अच्छा लगता है। हम्···मीर, हम्···मीर! कैसा मधुर नाम है!" उसकी आंखों से निकले हुए आंसू अभी भी गालों पर से नीचे ढुलक रहे थे।

जूनागढ़ के राजा दूर खड़े, प्रियम को राजकुमार से बातें करते देख रहे थे। वे समझ गये कि वह हठीली लड़की राह पर आ गयी है। उनकी जीत हुई है। अब प्रियम कछुवा से शादी करने से इनकार नहीं करेगी।

तब वह शानदार बारात ठाकुर के महल की ओर मुड़ गयी और फाटक पार कर अन्दर दाखिल हो गयी। फिर जल्दी ही, बड़े धूमधाम से प्रियम और कछुवा की शादी हो गयी। शादी की खुशी में सोरठ और जूनागढ़ दोनों नगरों में कई दिन तक जश्न मनाये गये।

बल्लू शाह, शाहे-कंजूस

बल्लूशाह गुजरात का रहनेवाला था और बड़ा ही कंजूस-मक्खीचूस था। पैसा खर्च करने में उसकी नानी मरती थी। दूसरों की कौन कहे उसे तो अपने आप पर भी पैसा खर्च करना पसन्द न था। एक दिन की बात है, उसने एक ऊंचे खजूर के पेड़ पर बढ़िया पके खजूर लगे देखे। बल्लूशाह का जी ललचा गया। मगर उस ऊंचाई पर से खजूर तोड़े तो कैसे? किसी दूसरे से कहा जाय तो वह पेड़ पर चढ़ने की मजूरी मांग बैठेगा और इतने छोटे काम की मजूरी देना बल्लूशाह को गंवारा न था। अन्त में उसने खुद ही पेड़ पर चढ़ने की सोची।

इसके पहले बल्लूशाह कभी किसी खजूर पर नहीं चढ़ा था। मगर जैसे तैसे





कोशिश करके सिरे पर पहुंच ही गया। वह खजूर तोड़ने ही वाला था कि अचानक उसकी निगाह नीचे की ओर जा पड़ी। उसने देखा कि जमीन तो पाताल में नजर आ रही है और वह खुद अधर में लटका हुआ है। डर के मारे बल्लूशाह के हाथ-पैर फूल गये। उस ऊंचाई तक पहुंचने में उसका दम पहले ही खुश्क हो रहा था, अब जो इस मुसीबत पर ध्यान गया तो हाथ की पकड़ भी ढीली होने लगी। उसे लगा कि मैं अब गिरा तब गिरा और गिरा तो फौरन मरा। उसने इधर-उधर देखा पर आसपास कोई न था। अब भगवान के सिवा उसका कोई न रहा। अगर भगवान उसे बचा लें तो वह सबकुछ करने को तैयार था। उसने मन ही मन प्रण किया कि सही-सलामत नीचे उतर गया तो एक हजार ब्राह्मणों को भोजन खिलाऊंगा।

इस प्रण के बाद उसकी हिम्मत कुछ बढ़ गयी। वह थोड़ा नीचे सरक आया। नीचे सरकते ही उसे ऐसा लगा कि इतनी सी बात के लिए एक हजार ब्राह्मणों को खाना खिलाना कुछ ज्यादा ही है। अगर सिर्फ पांच सौ को खिलाया जाये तब भी भगवान सन्तुष्ट हो सकते हैं।

"इतनी बड़ी संख्या को एकसाथ खिलाने में जो परेशानी होगी उसे भगवान अच्छी तरह समझ सकते हैं," उसने थोड़ा और नीचे आने पर मन ही मन कहा, "सही तो यह होगा कि पांच सौ के बदले सिर्फ दो सौ को खिलाया जाये।"

इस तरह वह ज्यों-ज्यों नीचे सरकता गया त्यों-त्यों ब्राह्मणों की संख्या भी घटाता गया।

अन्त में जब वह जमीन पर उतर आया तो उसने, एक बार फिर, बड़ी ही गम्भीरता से प्रण किया कि भगवान को प्रसन्न करने के लिए केवल एक ब्राह्मण को खाना खिलाया जायगा।

बल्लूशाह घर को रवाना हुआ। रास्ते में वह यह हिसाब लगाने लगा कि एक ब्राह्मण को खिलाने में कितना खर्च होगा? उसे लगा कि एक ब्राह्मण को खिलाने में भी कम खर्च नहीं होने का। किसी तरह इस खर्च को भी घटाना चाहिए। मगर घटाया जाय तो कैसे? सबसे अच्छा तरीका यह था कि किसी ऐसे ब्राह्मण को बुलाया जाये जो कम खाता हो। लेकिन ऐसा ब्राह्मण खोजे बिना नहीं मिल सकता था। कम खानेवाले ब्राह्मण की खोज में बल्लूशाह ने गांववालों से पूछताछ करनी शुरू की। काफी दौड़-धूप के बाद उसे पता



चला कि जानकीदास नाम का एक ब्राह्मण बहुत कम खाता है । परन्तु जानकीदास बड़ा चतुर और घाघ था । उसने बल्लूशाह के बारे में सब कुछ सुन रखा था । जब बल्लूशाह ने उसे खाने का निमंत्रण दिया तो वह फौरन राजी हो गया ।

घर जाकर बल्लूशाह ने अपनी बीबी को अपने प्रण की बात बतायी । साथ ही यह भी बताया कि उसने एक ब्राह्मण को खाने का निमंत्रण भी दे दिया है । वह ब्राह्मण दूसरे ही दिन खाने पर आनेवाला है ।

''शामली,'' उसने अपनी बीबी से कहा, ''भगवान को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण को खिलाना ही पड़ेगा । खिलाने-पिलाने का सारा इन्तजाम तुम्हारे जिम्मे है । पर इस बात का पूरा ध्यान रखना कि खर्च कम से कम हो ।''

अगले दिन पैंठ का दिन था । ब्राह्मण को खिलाने में जो घाटा होनेवाला था उसे पूरा करने की ग़रज से बल्लूशाह ने पैंठ में जाकर कुछ मुनाफा कमाने का इरादा कर रखा था । इसलिए उसने पाहुने को खिलाने की पूरी जिम्मेदारी अपनी बीबी पर छोड़ दी ।

''वैसे तो मुझे खुद अपने पाहुने की सेवा करनी थी,'' उसने अपनी बीबी से कहा, ''मगर मुझे कुछ बहुत जरूरी काम करने हैं, इसलिए तुम्हीं को सब कुछ करना पड़ेगा ।''

उस दिन जानकीदास ने सवेरे-सवेरे बल्लूशाह को पैंठ की ओर जाते देखा । मौका देखकर वह उसीदम बल्लूशाह के घर जा धमका । असल में वह यह देखना चाहता था कि उसकी दावत का इन्तजाम किस तरह हो रहा है । शामली ने अपने मेहमान को इतने सवेरे आया देखा तो उलझन में फंस गयी । उसने जानकीदास को प्रणाम किया और एक अच्छी जगह पर आसन देकर बिठाया ।

''मैं जरा मन्दिर में दर्शन करने जा रहा था,'' जानकीदास ने कहा, ''रास्ते में मैंने बल्लूशाह को देखा । वह कुछ जल्दी में था । मैंने सोचा कि तुम्हें शायद कुछ मदद की या सलाह की जरूरत हो, सो मैं हाजिर हो गया ।''

''आपकी बड़ी कृपा है,'' शामली ने कहा, ''आपके भोजन की सारी तैयारी विधि-नियम से ही हो रही है, यदि आपकी कोई और आज्ञा हो तो कहें, मैं उसी के मुताबिक काम करूंगी ।''

''यह तो मामूली बात है,'' जानकीदास ने कहा, ''लेकिन एक जरूरी बात ध्यान में रखनी ही होगी । प्रण तो केवल एक ब्राह्मण को खिलाने का है, परन्तु तुम्हें दस-बारह आदमियों की आवश्यकता के बराबर भोजन तैयार करना होगा । मुझे यकीन है कि जो कुछ पकाया जाना है वह तुम्हें मालूम ही होगा ।''



शामली ने उन सब चीजों के नाम बताये जो वह पकानेवाली थी ।

"बिल्कुल ठीक," जानकीदास ने कहा, "परन्तु सब विघ्नों को दूर करने वाले गणेशजी को प्रसन्न करने के लिए तीन प्रकार की मिठाईयां और रख दी जायें तो कोई हर्ज नहीं होगा। देखो न, जब प्रसन्न करना ही है तो सभी देवताओं को प्रसन्न क्यों न किया जाय।"

इतना कहकर जानकीदास चला गया ।

शामली ने दोपहर होने तक भोजन पका कर तैयार कर लिया । थोड़ी ही देर में ब्राह्मण देवता भी आ गये ।

"खाना तो तैयार हो ही गया होगा," उन्होंने कहा, "सबसे पहले हम पारिवारिक देवताओं को सन्तुष्ट करेंगे ।"

शामली ने एक दिया जलाया और फिर सारा भोजन उसके सामने परोस दिया ।

तब जानकीदास ने कहा, "तुम बड़ी सयानी औरत जान पड़ती हो । तुम्हारे भोजन परोसने का ढंग बिल्कुल सही और शास्त्र के अनुसार है । लेकिन भेंट की सामग्री में सोने की दो मोहरें भी होनी चाहिए थीं । अब तुम देख लो, मोहरों का होना तो बहुत जरूरी है ।"

शामली को याद था कि मोहरों के बारे में उसके पति ने कुछ नहीं कहा है । लेकिन यदि यह जरूरी रिवाज है तो मोहरें भी रखनी ही पड़ेंगी । अब इस पावन अवसर पर तर्क-वितर्क भी तो नहीं किया जा सकता ।

फिर जानकीदास जीमने बैठ गया । उसने खूब डटकर भोजन किया । जब उसका पेट भर गया तो उसने अपनी चादर फैलायी और बचा हुआ सारा भोजन बांध कर एक भारी-भरकम गठरी बना ली । यह सब वह अपने परिवार वालों के लिए ले जा रहा था । देवताओं की भेंट के लिए दी हुई सोने की मोहरें उसने अपनी टेंट में खोंसीं और कहा, "भोजन बहुत अच्छा था । ब्राह्मण सन्तुष्ट हुआ । भगवान तुमसे और बल्लूशाह से अवश्य प्रसन्न होंगे । अब सिर्फ एक आचार और बाकी रह गया है और वह है दक्षिणा ।"

शामली कुछ नहीं समझी ।

तब जानकीदास ने समझाते हुए कहा, "जब किसी ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है तो वह तबतक पूरा नहीं माना जाता जबतक कि तुम कम से कम दो सोने की मोहरें दक्षिणा में न दो । यह तो जग-जानी रीति है । तुम जैसी योग्य गृहिणी को तो इसका पता होना चाहिए ।"

बेचारी शामली मन ही मन डर रही थी कि बल्लूशाह इस तरह 'दक्षिणा' देना कतई पसन्द नहीं करेगा । लेकिन अगर यह जग-जानी रीति है तो दिये बिना चारा भी नहीं । उसने जानकीदास को दो मोहरें और दे दीं ।

पूरी तरह सन्तुष्ट होकर जानकीदास घर को लौट गया । घर आकर उसने अपनी बीबी से कहा कि कुछ ही देर में बल्लूशाह हमारे घर आयेगा । उस समय वह बहुत गुस्से में होगा । उसके आने पर तुम्हें जो कुछ करना होगा उसे गौर से सुन लो । ऐसा कहकर जानकीदास ने अपनी बीबी को कुछ बातें

समझायीं। इसके बाद वह अपने कमरे में जाकर सो गया। उसका पेट इतना भरा था कि मारे आलस्य के थोड़ी ही देर में खर्राटे भरने लगा।

उधर बल्लूशाह घर पहुंचा तो अंधेरा हो चला था। शामली ने उसे ब्राह्मण के खाने और दक्षिणा ले जाने की बात कह सुनायी। बल्लूशाह ने ब्राह्मण की कारस्तानी सुनी तो मारे गुस्से के आगबबूला हो गया। वह एक डण्डा उठाकर, उसीदम जानकीदास के घर की ओर दौड़ा।

ब्राह्मण की बीबी ने बल्लूशाह को डण्डा लेकर आते देखा तो वह छाती पीटती हुई, धाड़ें मार कर रोने लगी।

"अरे दुष्ट," उसने चीख-चीख कर कहा, "तूने मेरे पति के क्या हाल बना दिये। तूने उन्हें जहर खिला दिया है, तूने, हां तूने। तेरे ही घर का खाना खाकर उनके ये हाल हुए हैं। अगर मेरे पति मर गये तो तू भी बच के नहीं जायेगा। पुलिस आयेगी और तुझे पकड़कर फांसी चढ़ा देगी। हे भगवान, अगर मेरे

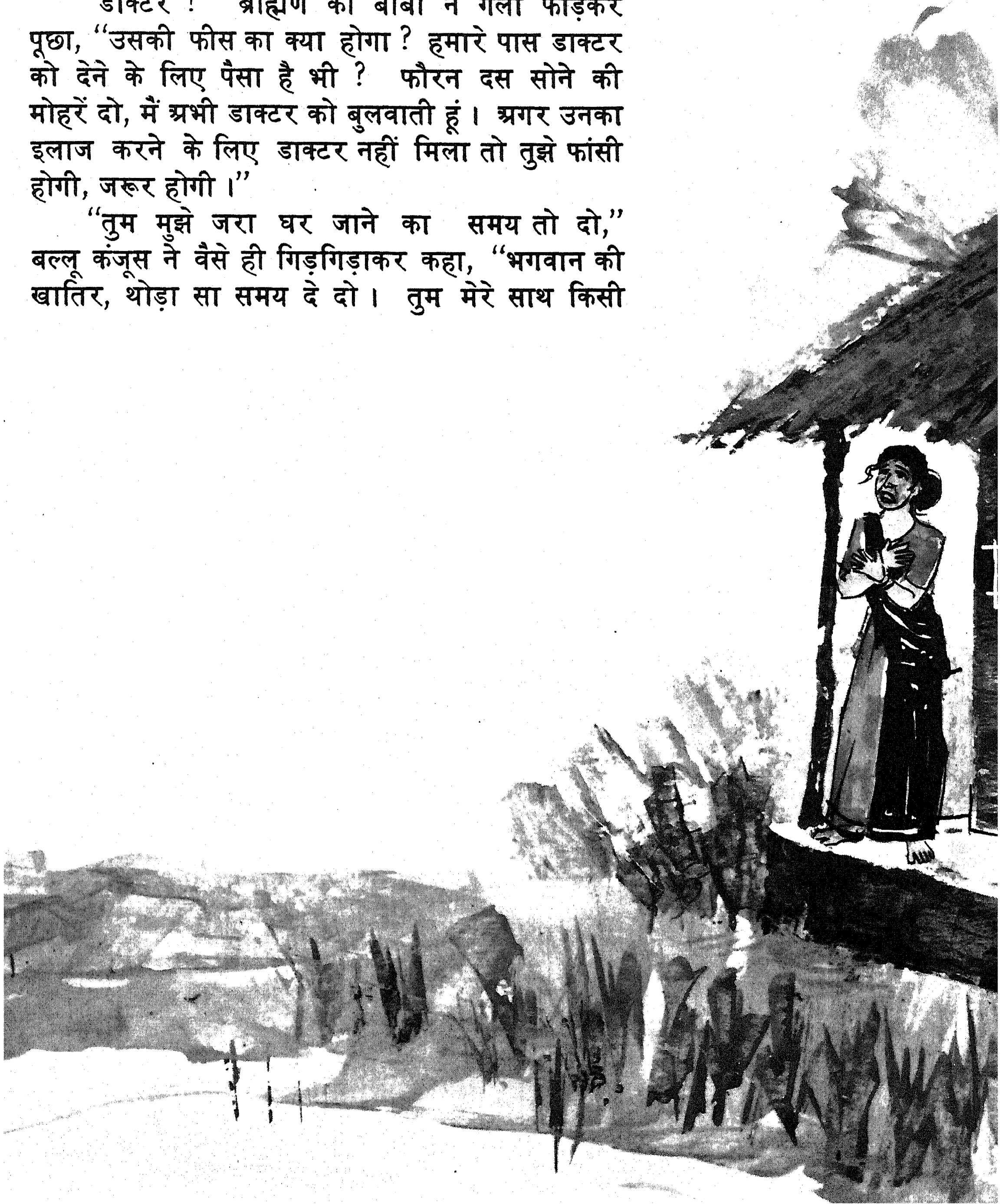


पति मर गये तो मेरे बच्चों का क्या होगा?"

"जरा धीरे बोलो," बल्लूशाह ने गिड़गिड़ाकर कहा, "कहीं लोग सुन लेंगे। तुम डाक्टर क्यों नहीं बुला लेतीं।"

"डाक्टर ?" ब्राह्मण की बीबी ने गला फाड़कर पूछा, "उसकी फीस का क्या होगा? हमारे पास डाक्टर को देने के लिए पैसा है भी ? फौरन दस सोने की मोहरें दो, मैं अभी डाक्टर को बुलवाती हूं। अगर उनका इलाज करने के लिए डाक्टर नहीं मिला तो तुझे फांसी होगी, जरूर होगी।"

"तुम मुझे जरा घर जाने का समय तो दो," बल्लू कंजूस ने वैसे ही गिड़गिड़ाकर कहा, "भगवान की खातिर, थोड़ा सा समय दे दो। तुम मेरे साथ किसी





को भेज देना। मैं उसी के हाथ दस मोहरें भिजवा दूंगा, सोने की मोहरें। तुम शहर के सबसे अच्छे डाक्टर से इलाज करवाना, सबसे अच्छे डाक्टर से।"

तब बल्लूशाह, जानकीदास के लड़के को लेकर, जितनी तेजी से हो सकता था, घर की ओर भागा।

उसे देखते ही उसकी बीबी ने पूछा, "इतनी हड़बड़ी में क्यों हो ? क्या हुआ ?"

"अरे भागवान," बल्लूशाह ने कहा, "सत्यानाश हो गया। तूने जानकीदास को जहर खिला दिया और फांसी मुझे होनेवाली है।"

बल्लूशाह ने चटपट अपनी तिजोरी खोली, दस सोने की मोहरें निकालीं और जानकीदास के लड़के को देकर बोला, "ये मोहरें लेकर भागो और अपनी अम्मा से कहना कि वे जल्दी से जल्दी और अच्छे से अच्छा डाक्टर बुलायें।"

लड़का मोहरें लेकर चल दिया। उसके जाते ही बल्लूशाह को फिर भगवान की याद आयी। "हे भगवान," उसने कहा, "फांसी के फन्दे से बचा लो तो एक हजार एक ब्राह्मणों को भोजन कराऊंगा, पूरे एक हजार एक।"

चांदी की टोकरी



राजा चित्रदेव का राजमहल नर्मदा नदी के तट पर था। महल में अनेक नौकर-चाकर थे। उन्हीं में गोविन्द भी एक था। एक दिन सवेरे की बात है, राज-कुमारी नन्दिनी महल के बागीचे में फूल तोड़ने गयी हुई थी। उसके साथ गोविन्द भी था। नन्दिनी के हाथों में चांदी की टोकरी थी। वह तरह-तरह के फूल तोड़कर टोकरी में डालती जाती थी। जब टोकरी पूरी भर गयी तो वह महल की ओर चल दी।

वापस जाते समय उन्हें एक लम्बी सफेद दाढ़ी वाला जटाजूटधारी बूढ़ा दिखायी दिया। वह महल के बाहर बैठा था। उसके चारों ओर कई लोग जमा थे। बूढ़ा उनसे बातें कर रहा था।





"गोविन्द, वह बूढ़ा कौन है?" नन्दिनी ने पूछा, "और वहां बैठा क्या कर रहा है?"

"मैं अभी पता करके आता हूं," गोविन्द ने कहा, "तबतक आप यहीं रुकी रहें।" ऐसा कहकर गोविन्द बूढ़े की तरफ चल दिया।

वह कुछ ही मिनटों में लौट आया और राजकुमारी से बोला, "बूढ़ा ज्योतिषी है। कहता है कि मैं किसी को भी यह बता सकता हूं कि उसकी शादी किससे होगी।"

"सच!" राजकुमारी ने चकित होकर पूछा, "कैसी अनोखी बात है। पर बताता कैसे है?"

"वह घास के दो तिनके लेकर उन्हें आपस में बांध देता है," गोविन्द ने समझाते हुए कहा, "और फिर कहता है कि यह विवाह की ब्रह्म-गांठ है।"

"तुम फिर बूढ़े के पास जाओ," राजकुमारी ने कहा, "और यह पूछ कर आओ कि हमारी शादी किससे होगी?"

"राजकुमारी," गोविन्द ने कहा, "ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं होगी। इस तरह के ज्योतिषी लोगों को खुश करने के लिए झूठमूठ की बातें करते फिरते हैं। यह उनका रोजी कमाने का धन्धा है। ऐसे लोगों से बच के रहने में ही भलाई है।"

"हमने तुम्हारी राय नहीं पूछी," राजकुमारी ने तुनक कर कहा, "फौरन जाओ जो हम कह रहे हैं पूछ कर आओ।"

"अच्छी बात है राजकुमारी," गोविन्द ने कहा, "अगर आपकी यही आज्ञा है तो मैं जाकर पूछ आता हूं।"

गोविन्द एक बार फिर बूढ़े के पास गया। राजकुमारी वहीं पर खड़ी उसका इन्तजार करती रही।

"मैं राजमहल से आया हूं," गोविन्द ने ज्योतिषी के पास आकर उसके कान में फुसफुसाकर कहा, "मैं तुमसे अकेले में बात करना चाहता हूं ताकि हमारी बात कोई न सुन सके।"

बूढ़ा लोगों के बीच से उठकर गोविन्द के साथ एक अलग कोने में चला गया।

"बोलो, क्या पूछना चाहते हो?" बूढ़े ने गोविन्द से कहा।

"राजकुमारी नन्दिनी यह जानना चाहती हैं कि उनकी शादी किससे होगी?" गोविन्द ने कहा।

बूढ़े ने घास के दो तिनके उठाये और उन्हें बांधकर एक गांठ बनायी। कुछ देर तक वह बड़े ही गौर से गांठ को देखता रहा। फिर गोविन्द की ओर देख मुस्कराने लगा।

"राजकुमारी नन्दिनी की शादी तुमसे होगी," उसने कहा।

"मुझसे?" गोविन्द भौंचक होकर बोला, "मैं तो उनका नौकर हूं, सिर्फ नौकर। तुम्हारी बात गलत है, बिल्कुल गलत।"

"मेरी बात गलत हो ही नहीं सकती," बूढ़े ने कहा, "तुम्हीं उसके होनेवाले पति हो।"

गोविन्द धीरे-धीरे, भारी कदमों से महल की ओर चल दिया।

"क्या हुआ?" नन्दिनी ने उसे देखते ही पूछा, "ज्योतिषी ने क्या कहा?"

"राजकुमारी," गोविन्द ने गम्भीर होकर कहा, "मैंने आपसे पहले ही कहा था कि ऐसे ज्योतिषी कभी सच नहीं बता सकते। इस ज्योतिषी ने ऐसी बुरी बात बतायी है कि मैं आपसे कह ही नहीं सकता।"

"ज्योतिषी ने चाहे जो कहा हो, तुम्हें बताना होगा," राजकुमारी ने कहा।

"मैं बता ही नहीं सकता," गोविन्द ने कहा, "उसने इतनी बुरी बात कही है कि मैं उसे जबान पर भी नहीं ला सकता।"

"यह मेरा हुक्म है, जो बूढ़े ने कहा है तुम्हें बताना होगा।"

"अच्छी बात है," गोविन्द ने जवाब दिया, "अगर आपका हुक्म है तो मुझे मानना ही पड़ेगा।"

"हां, मानना पड़ेगा," नन्दिनी ने कहा।

"ज्योतिषी ने कहा है कि आपकी शादी मुझसे होगी," गोविन्द ने कहा।

"क्या बदतमीजी है!" नन्दिनी उस पर बरस पड़ी, "मुझसे ऐसी बात कहने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?"

गुस्से के मारे राजकुमारी अपना आपा भूल गयी। उसने फूलों से भरी चांदी की टोकरी गोविन्द के सिर पर दे मारी और मुंह फेर, पैर पटकती महल को चली गयी।



चांदी की टोकरी गोविन्द के माथे से टकरायी। उसके माथे पर घाव हो गया और खून बहने लगा। राजकुमारी की इस हरकत पर उसे भी गुस्सा आ गया।

"आप राजकुमारी होंगी तो होंगी," तेजी से जाती हुई राजकुमारी की ओर देख कर उसने कहा, "लेकिन आपको मेरी बेइज्जती करने का कोई हक नहीं।"

नन्दिनी के तोड़े हुए फूल घास पर चारों ओर बिखर गये थे और चांदी की टोकरी एक ओर ढुलक गयी थी। गोविन्द ने नीचे झुक कर टोकरी उठायी और फाटक से बाहर निकल गया।

"अब फिर कभी भी इसका मुंह नहीं देखूंगा," उसने घर की ओर जाते-जाते, मन ही मन सोचा।

गोविन्द ने तय कर लिया कि अब राजकुमारी के महल में नौकरी करने की बजाय उसे कहीं दूर देश की यात्रा पर चले जाना चाहिए। और वहीं कोई दूसरा काम खोजना चाहिए।

दूसरे दिन सवेरे उसने अपना सामान संभाला और विदेश-यात्रा पर रवाना हो गया। माथे पर लगी चोट के कारण उसके सिर पर पट्टी बंधी थी। वह कई दिनों तक पैदल चलता रहा। चलते-चलते एक बड़े नगर में जा पहुंचा। उस नगर के लोग कोई आनन्द उत्सव जैसा मना रहे थे। सभी ने अच्छे से अच्छे कपड़े पहन रक्खे थे और सभी बड़े खुश नजर आ रहे थे।

"यहां तो बड़ी चहल-पहल दिखायी दे रही है," गोविन्द ने एक लड़के से कहा, "यह सब किस खुशी में हो रहा है?"

"तुम्हें पता नहीं?" लड़के ने जवाब में कहा, "आज हमारे नये राजा का चुनाव होगा।"

लड़के की बात सुन कर गोविन्द ने इस बारे से सभी कुछ जानने की इच्छा प्रकट की।

"इस देश के राजा का अभी हाल ही में देहान्त हुआ है," लड़के ने उसे बताया, "मरने से पहले वे हुक्म दे गये हैं कि अगले राजा का चुनाव एक हाथी करे। आज वह हाथी नया राजा छांटनेवाला है। यही वजह है कि इतने राजकुंवर और सरदार नगर में आये हैं। आओ हम भी चलें, खूब तमाशा रहेगा।"

तब गोविन्द भी लड़के के साथ उस स्थान पर गया जहां राजा को छांटनेवाले हाथी की इन्तजार में ढेरों लोग जमा थे। उस स्थान पर लोगों की अथाह भीड़ इकट्ठा हो गयी थी। कई राजकुंवर और सरदार तैयार खड़े थे, उनमें से हरेक यह उम्मीद लगाये हुए था कि हाथी उसी भाग्यवान को छांटेगा।

थोड़ी ही देर में बाजे-गाजे और ढोल-ताशों की आवाज के साथ शाही हाथी

ने प्रवेश किया। वह बड़े-बड़े दांतोंवाला शानदार हाथी था ग्रौर इस खास मौके के लिए बड़ी ही खूबसूरती से सजाया गया था। हाथी की सूंड में एक सुन्दर हार था। उसे वह हार, ग्रच्छी तरह देखभाल कर, उस भाग्यवान को पहनाना था जो देश का भावी राजा बननेवाला है। हाथी धीरे-धीरे ग्रागे बढ़ने लगा। उसने हर एक को गौर से देखा, मगर, किसी के भी गले से हार डाले बिना, ग्रागे बढ़ गया। उसने एक एक कर सभी राजकुंवरों ग्रौर सरदारों को देखा पर उनमें से किसी को भी राजा नहीं छांटा।



अब वह राजकुंवरों को छोड़कर उस ओर बढ़ा जिस ओर साधारण जनता खड़ी थी।

"हाथी असली राजा की खोज कर रहा है," किसी ने आवाज लगायी।

जनता में सनसनी सी फैल गयी। लोग जोर-जोर से आवाजें लगाते और हाथी को पुचकारते हुए अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश करने लगे। हर कोई हाथी के नजदीक जाना चाहता था, उसे थपथपाना चाहता था। मगर हाथी शान्ति से डग बढ़ाता हुआ चलता रहा।



तभी अचानक गोविन्द हाथी के सामने पड़ गया। हाथी रुका, थोड़ा नजदीक आया और गौर से गोविन्द को देखने लगा। फिर उसने, गोविन्द के आगे झुककर, उसके गले में हार पहना दिया।

गोविन्द के गले में हार पड़ते ही शंखध्वनि होने लगी और ढोल-नगाड़े बजने लगे। राज्य के मंत्रियों और राज्य-कर्मचारियों ने गोविन्द के आगे झुककर सम्मान प्रकट किया।

गोविन्द के आश्चर्य का ठिकाना न था। उसे लगा जैसे वह कोई सपना देख रहा हो। उसे यकीन ही नहीं आ रहा था कि जो कुछ हो रहा वह सच ही है।

इसके बाद गोविन्द को उसी हाथी पर बिठाया गया जिसने उसे देश का राजा चुना था। फिर एक शानदार जुलूस के साथ उसे महल की ओर ले जाया गया। वहां उसका विधिवत राज्याभिषेक किया गया।

गोविन्द एक नेक राजा था। वह बहुत समझदार, बुद्धिमान और सज्जन था। उसकी प्रजा उसका सम्मान करती थी और उसे बहुत चाहती थी। बहुत जल्दी ही एक महान और अच्छे शासक के रूप में उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी।

गोविन्द को राजा बने काफी दिन हो गये थे। अब उसके विवाह का समय भी आ गया था। राजा ने योग्य दूल्हन की खोज से अनेक स्थानों को दूत भेजे।

नन्दिनी के पिता चित्रदेव ने भी प्रसिद्ध राजा गोविन्द के बारे से सुना। उन दिनों वह नन्दिनी के लिए योग्य वर की तलाश में था। उसने सोचा कि अगर गोविन्द के साथ नन्दिनी का विवाह हो जाये तो कितना अच्छा हो। उसने राजा गोविन्द के पास विवाह का सन्देश भेजा। गोविन्द राजी हो गया।

नन्दिनी और गोविन्द की शादी बड़ी धूमधाम से हुई। सभी ने वर और वधू के लिए मंगलकामना की।

जब गोविन्द नन्दिनी को लेकर अपने राज्य में लौटा तो देश भर में खुशियां मनायी गयीं। लोग अपनी नयी रानी को पाकर बहुत प्रसन्न थे।

एक दिन नन्दिनी ने गोविन्द से पूछा, "आपके माथे पर यह चोट का निशान कैसा है। इतना बड़ा घाव अवश्य ही किसी लड़ाई के मैदान में लगा होगा।"

"यह निशान", गोविन्द ने मुस्करा कर कहा, "विवाह का पवित्र चिन्ह है।"

"मैं आपका मतलब समझी नहीं," नन्दिनी ने कहा, "साफ-साफ बताइये ना।"

"सीधी-सी बात है," गोविन्द ने कहा, "यह निशान मेरे अच्छे भाग्य का चिन्ह है। इसने मुझे राजा बनाया और इसी ने मुझे तुम्हारा पति भी बनाया है।"

"महाराज," नन्दिनी ने कौतूहल से बेताब होकर कहा, "पता नहीं आप क्या पहेली बुझा रहे हैं। सीधी तरह से बतलाइये ना। आपको यह चोट कहां लगी ?"

"अच्छी बात है," गोविन्द ने कहा, "तुम जरा देर यहां रुको, मैं अभी सारी बात बताये देता हूं।"

इतना कहकर गोविन्द कमरे से बाहर चला गया और थोड़ी ही देर में चांदी की टोकरी लेकर लौट आया।

"याद करो, यह क्या है?" गोविन्द ने पूछा।



नन्दिनी ने टोकरी की ओर देखा। पहले तो वह कुछ उलझन में पड़ गयी, फिर उसे एकाएक सब कुछ याद आ गया। वह उसी की टोकरी थी।

"ओह !" उसने कहा, "यह टोकरी तो मेरी है।"

उसने गोविन्द की ओर गौर से देखा।

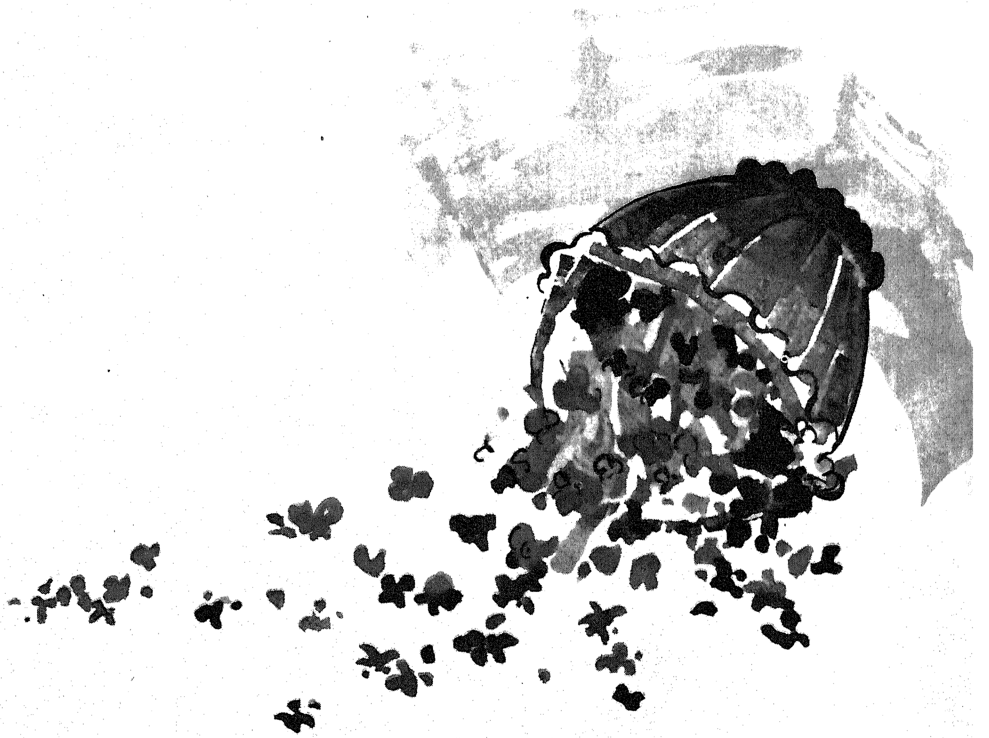
"गोविन्द!" वह चौंककर बोली, "अब मैं समझी आप वही गोविन्द हैं। यह टोकरी मैंने आप पर फेंकी थी। क्षमा कीजिये, मुझे क्षमा कीजिये। मुझे क्या पता कि यह चोट मेरी ही लगायी हुई है। उस दिन मैंने आपसे बहुत बुरा बरताव किया था। आप मुझे क्षमा कर देंगे, कर देंगे ना ?"

"इसमें क्षमा की क्या बात है रानी," गोविन्द ने जवाब दिया, "टोकरी फेंकने के लिए तो मुझे ही तुम्हें धन्यवाद देना चाहिए।"

"धन्यवाद और मुझे? क्यों ?" नन्दिनी ने पूछा।

"क्योंकि अगर गुस्सा होकर तुम यह टोकरी मेरे सिर पर न मारती तो मैं आज भी तुम्हारे महल में ही होता," गोविन्द ने कहा, "और महल में ही होता तो आज राजा न बनता, और अगर राजा न बनता तो तुमसे शादी कैसे करता ?"

"कैसी अनोखी बात है," नन्दिनी ने कहा, "आखिरकार उस बूढ़े ज्योतिषी की बात ठीक ही निकली।"



तेजीमाला

किसी समय ग्रसम के एक गांव में एक सौदागर रहता था। वह बहुत ग्रमीर था। उसकी एक लड़की थी। लड़की का नाम तेजीमाला था। तेजीमाला बहुत सुन्दर लड़की थी। परन्तु उसकी मां नहीं थी। वह तेजीमाला के छुटपन में ही स्वर्ग सिधार गयी थी। उसके





पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। तेजीमाला की सौतेली मां बहुत दुष्ट और निर्दयी औरत थी। वह तेजीमाला से कुढ़ती थी और उसके साथ बुरा बरताव करती थी। मगर तेजीमाला बहुत भली और मीठे स्वभाव की लड़की थी। वह अपनी सौतेली मां का कहा मानती और जैसा वह चाहती वैसा ही किया करती थी। घर में झाड़ू लगाना, बर्तन मलना, जंगल से लकड़ी लाना और ऐसे ही दसियों तरह के काम तेजीमाला को ही करने पड़ते थे। परन्तु उसकी सौतेली मां कभी खुश नहीं होती थी। वह उसके कामों में जबरदस्ती खोट निकालती और जरा सी बात पर तेजीमाला को पीटने लगती थी।

तेजीमाला के पिता अक्सर घर के बाहर रहते थे। क्योंकि उन्हें अपने व्यापार के सिलसिले में लम्बी-लम्बी यात्राएं करनी पड़ती थीं।

तेजीमाला बड़ी हुई तो पिता को उसके विवाह की चिन्ता होने लगी। वह तेजीमाला के लिए योग्य वर खोजने लगे। अनेक स्थानों में, अनेक घर देखने के बाद अन्त में उन्हें एक योग्य लड़का मिल गया। वह बड़ा ही सुन्दर और गुणवान लड़का था। लेकिन शादी करनें से पहले तेजीमाला के पिता उस लड़के को दुनियादारी का अनुभव कराना चाहते थे। वे उसे लेकर एक लम्बी यात्रा पर निकल गये और देश-देश, नगर-नगर की सैर कराते रहे।

उनकी गैरहाजिरी में तेजीमाला अपनी निर्दयी सौतेली मां के पंजे में अकेली रह गयी। अब उसके काम का बोझ दिन पर दिन बढ़ने लगा। कपड़ों के नाम पर उसे सिर्फ चीथड़े पहनने को मिलते और खाने के नाम पर बची-खुची जूठन। इसके अलावा जब भी उसकी सौतेली मां को सूझती वह तेजीमाला पर बेबात बरस पड़ती और उसे पीटने लगती थी। इतना होने पर भी तेजीमाला धैर्य से सबकुछ सहती रही। उसनें अपनी सौतेली मां के खिलाफ कभी कुछ नहीं कहा।

एक दिन तेजीमाला की सौतेली मां धान कूट रही थी। उसने तेजीमाला को हाथ बंटाने के लिए बुलाया। तेजीमाला उसका हाथ बंटाने लगी। लेकिन जब उसने धान की ढेरी ओखली की तरफ सरकाने के लिए हाथ बढ़ाये तो सौतेली अम्मा ने उसके हाथों में मूसल दे मारा। बेचारी तेजीमाला के दोनों हाथ कुचले गये। दूसरे दिन उसने ठीक इसीतरह तेजीमाला के पैर कुचल दिये और तीसरे दिन उसका सिर फोड़ डाला। सिर फूटते ही तेजीमाला मर गयी। उसके मरते ही उस दुष्ट औरत नें झूठमूठ के आंसू बहाना और जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। ताकि पड़ोसियों को यह यकीन हो जाये कि तेजीमाला किसी दुर्घटना के कारण मरी है। रोना-धोना सुनकर पड़ोसी आये। उन्होंने तेजीमाला के मरने पर सहानुभूति प्रकट की और उसके शव को पास ही बागीचे में दफना दिया।

कुछ दिनों बाद तेजीमाला की कब्र से एक बेल उग आयी। बेल लगातार बढ़ने लगी। वह सीताफल की बेल थी उसमें कई बड़े-बड़े सीताफल लगे हुए थे।

एक दिन एक आदमी वहां से गुजरा। ताजे-ताजे सीताफल देखकर उसने उन्हें चुराना चाहा। पर जैसे ही उसने हाथ बढ़ाया वैसे ही एक आवाज सुनायी पड़ी, "ठहरो!" आवाज ने कहा, "मुझे छूना मत। मैं सीताफल नहीं तेजीमाला हूं।





आदमी डरकर भाग खड़ा हुआ।

सीताफल की बेल से जो आवाज आयी थी उसे तेजीमाला की सौतेली मां ने भी सुना। उसने फौरन बेल उखाड़ी और तोड़ताड़कर फेंक दी। लेकिन जिस जगह सीताफल की बेल थी ठीक वहीं एक मिर्च का पौधा उग आया। उसमें हरी और लाल-लाल मिर्चें लगी थीं। उस रास्ते से गुजरते हुए चरवाहों ने ताजी-ताजी मिर्चें देखी तो उन्हें तोड़ना चाहा। पर जैसे ही तोड़ने को हाथ बढ़ाया वैसे ही फिर आवाज सुनायी पड़ी, "ठहरो! मुझे छूना मत। मैं मिर्च का पौधा नहीं, तेजीमाला हूं।"

चरवाहों ने समझा कि जरूर कोई भूत बोल रहा है। वे जान बचाकर भागे।

तेजीमाला की सौतेली मां ने मिर्च का वह पौधा भी उखाड़ डाला और इस बार उसे दूर नदी में फेंक दिया। नदी के बीच, जिस जगह मिर्च का पौधा गिरा ठीक वहीं पर, एक सुन्दर कमल उग आया।

संयोग से उसी समय तेजीमाला के पिता युवक को लेकर घर लौट रहे थे। वे एक नाव में बैठकर उसी नदी से आ रहे थे। जब युवक ने नदी के बीच उगा

सुन्दर कमल देखा तो उसे तोड़ने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

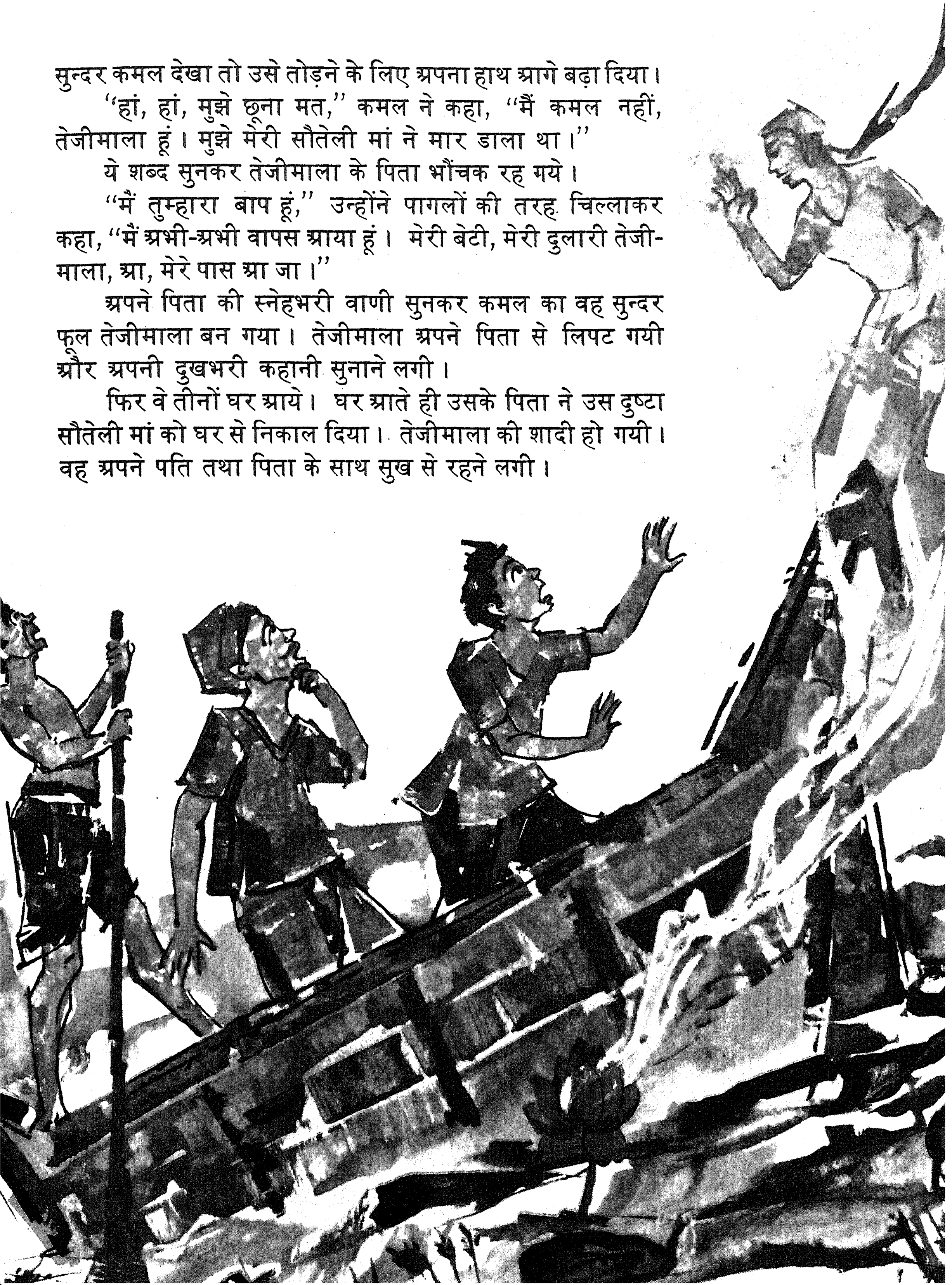
"हां, हां, मुझे छूना मत," कमल ने कहा, "मैं कमल नहीं, तेजीमाला हूं। मुझे मेरी सौतेली मां ने मार डाला था।"

ये शब्द सुनकर तेजीमाला के पिता भौंचक रह गये।

"मैं तुम्हारा बाप हूं," उन्होंने पागलों की तरह चिल्लाकर कहा, "मैं अभी-अभी वापस आया हूं। मेरी बेटी, मेरी दुलारी तेजी-माला, आ, मेरे पास आ जा।"

अपने पिता की स्नेहभरी वाणी सुनकर कमल का वह सुन्दर फूल तेजीमाला बन गया। तेजीमाला अपने पिता से लिपट गयी और अपनी दुखभरी कहानी सुनाने लगी।

फिर वे तीनों घर आये। घर आते ही उसके पिता ने उस दुष्टा सौतेली मां को घर से निकाल दिया। तेजीमाला की शादी हो गयी। वह अपने पति तथा पिता के साथ सुख से रहने लगी।



लक्ष्मी की गुड़िया

लक्ष्मी का घर तंजौर के पास एक छोटे से गांव में था। घर में उसकी सास के सिवा ग्रौर कोई नहीं था। उसका पति कमाने-धमाने के लिए विदेश गया हुग्रा था ग्रौर कई वर्षों से घर नहीं ग्राया था। पति के जाने का लक्ष्मी को बहुत दुख था। मगर उसकी सास उसे बहुत चाहती थी। वह बड़े ही प्यार ग्रौर जतन से लक्ष्मी की देखभाल करती थी। लक्ष्मी भी ग्रपनी सास को उतना ही चाहती थी। वह ग्रपनी सास से पूछे बिना कभी कोई काम नहीं करती थी। यहां तक कि रोज-रोज के छोटे-मोटे कामों में भी वह अपनी सास की सलाह लिया करती थी।

वह पूछती, "क्या मैं नहालू?" या फिर, "एक केला खालूं?" या "बाजार जाकर भाजी-तरकारी ले ग्राऊं?"

ग्रौर उसकी सास हमेशा एक ही जवाब देती। वह कहती, "हां बहू, हां।"

एक दिन उसकी सास बीमार पड़ गयी। लक्ष्मी ने उसकी खाट के पास बैठकर

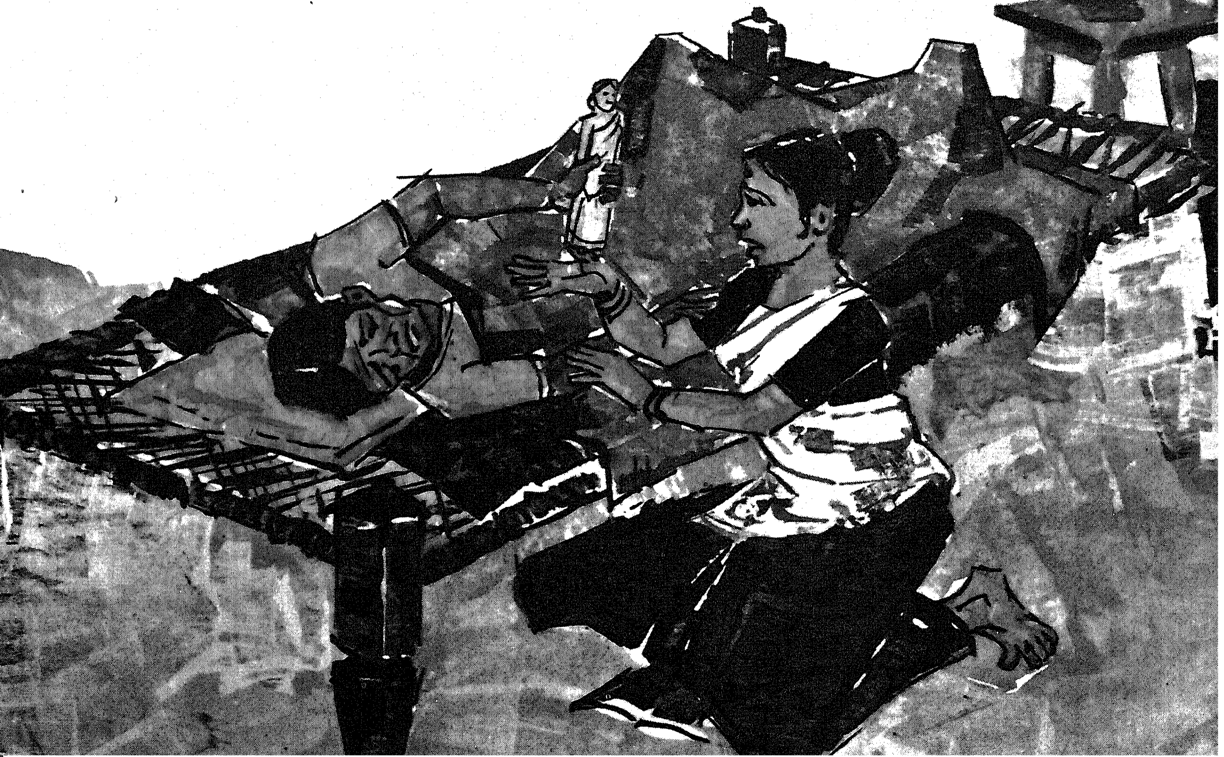
बहुत सेवा-टहल की। परन्तु बुढ़िया की तबीयत दिन पर दिन खराब होती गयी। लक्ष्मी जान गयी कि अब उसकी सास बच नहीं सकती।

वह बुढ़िया सास से लिपट कर रोने लगी, "मां, ओ मां," उसने रोते-रोते कहा, "मुझे अकेली छोड़कर मत जाना, तुम्हारे पैर पड़ती हूं, मत जाना।"

लक्ष्मी को रोते देखकर उसकी सास का मन दुख से भारी हो गया। उसने लक्ष्मी को अपने करीब खींच लिया और प्यार से चूमने लगी। फिर कुछ देर बाद बोली, "चिन्ता न कर बहू, हिम्मत रख। मेरी लाड़ली, अगर तू हिम्मत से काम लेगी तो घर को आसानी से संभाल सकेगी। फिक्र न कर, तेरा पति जल्द ही लौट आयेगा, फिर तुम दोनों सुख से रहना।"

"ओ मां," लक्ष्मी ने सुबकते हुए कहा, "तुम्हारे बिना मैं क्या करूंगी, कैसे रहूंगी ?"

"मैं तुझे एक चीज देती हूं" बुढ़िया सास ने कहा, "इससे तेरा काम आसान हो जायेगा।" ऐसा कहकर उसकी सास ने अपने सिरहाने से एक गुड़िया निकाली। वह लकड़ी की गुड़िया थी।



उसने गुड़िया लक्ष्मी को देते हुए कहा, "जब मैं नहीं रहूंगी तब इसी को मेरी जगह मान लेना।"

कुछ दिन बाद, लक्ष्मी को घर में अकेली छोड़, बुढ़िया स्वर्ग सिधार गयी।

कई दिन तक दुख और शोक के मारे लक्ष्मी बेचारी कुछ न कर सकी। फिर एक दिन उसे गुड़िया की याद आयी। वह गुड़िया निकाल कर लायी और देर तक उसे ताकती रही।

"अब तुम्हीं मेरी अम्मा हो," उसने कहा, "मैं जहां जाऊंगी तुम्हें हमेशा अपने साथ ले जाऊंगी और जब मुझे जरूरत होगी तो तुम्हीं को सलाह भी देनी पड़ेगी।"

गुड़िया पास होने से लक्ष्मी की हिम्मत बंध गयी।



वह अक्सर गुड़िया से पूछा करती, "मैं यह कर लूं ?" या "वह कर लूं ?" और फिर गुड़िया की तरफ से खुद ही स्वर बदलकर कहती, "हां बहू हां, करले।"

रोज सवेरे जब वह नींद से जागती तो गुड़िया से पूछती, "मां, मैं उठ जाऊं ?"

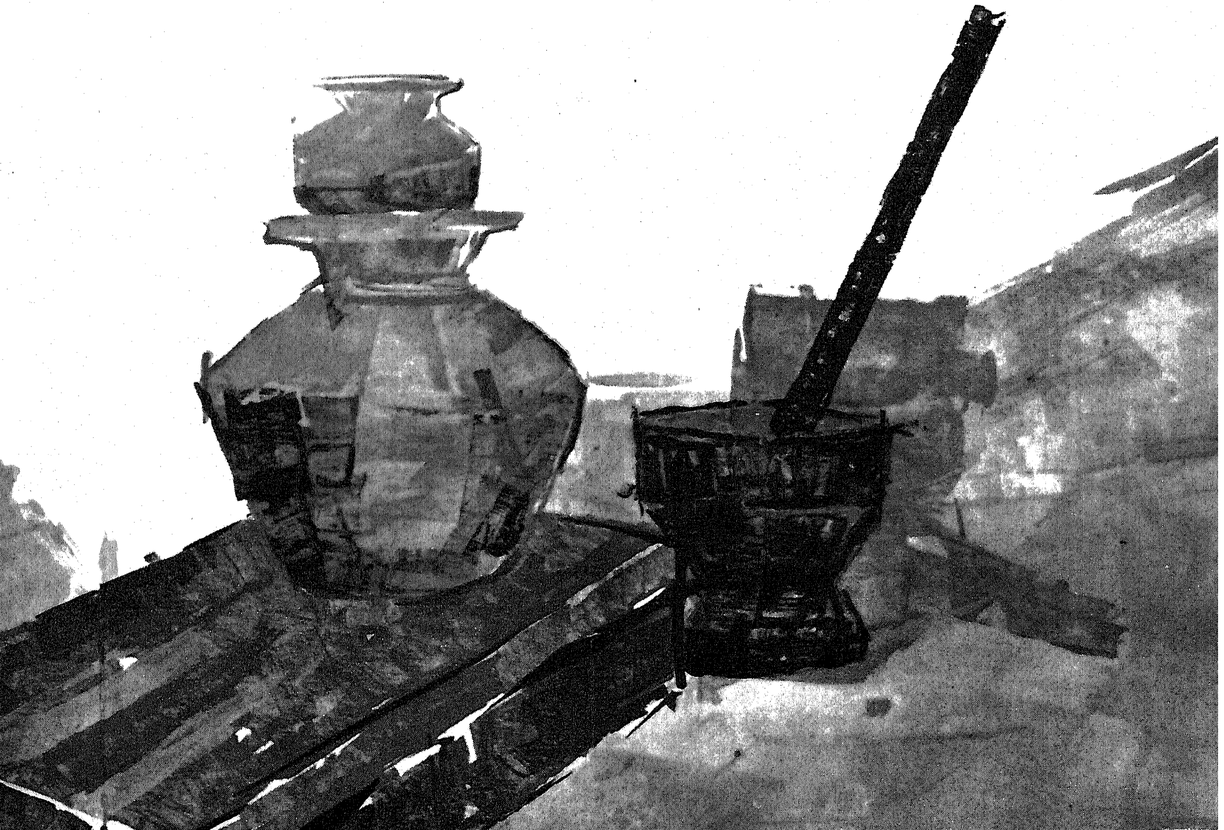
और गुड़िया जवाब देती, "हां बहू हां, उठ जा ।"

दिन बीतते गये । लक्ष्मी ने धीरे-धीरे घर का सारा कामकाज संभाल लिया । वह सुघड़ गृहिणी बन गयी । उसकी गुड़िया हमेशा उसके साथ रहती । और जब भी उसे कुछ निर्णय लेना होता तो वह तुरन्त उसकी सहायता लेती थी ।

एक शाम घर में जलाने के लिए लकड़ी नहीं थी । लक्ष्मी ने गुड़िया से पूछा, "मां, मैं जंगल जाकर कुछ लकड़ी बटोर लाऊं ?"

"हां बहू हां," गुड़िया ने कहा, "जा बटोर ला, पर देखना कहीं रास्ता न भूल जाना ।"

लक्ष्मी जंगल को चल दी । वहां पहुंचकर वह इधर-उधर से सूखे डण्ठल





ग्रौर छोटी-छोटी टहनियां बटोरने लगी । इसी बीच ग्रचानक ही, ग्राकाश में ग्रंधियारे बादल छा गये । फिर बिजली चमकी, बादल गरजे ग्रौर पानी बरसने लगा ।

लक्ष्मी ने गुड़िया से पूछा, "मां, ग्रब मैं क्या करूं ? किसी बड़े पेड़ के नीचे खड़ी हो जाऊं क्या ?"

"हां बहू हां, जा, खड़ी हो जा ।"

किसी ग्रच्छे छायादार पेड़ की खोज में वह इधर-उधर दौड़ने लगी। ग्राखिरकार उसे एक स्थान पर बरगद का एक पेड़ दिखायी दिया । वह उसी पेड़ की जड़ के पास ग्राकर बैठ गयी । वर्षा थमने के इन्तजार में वह घण्टों पेड़ के नीचे बैठी रही ।

लेकिन जब वर्षा थमी तो रात हो गयी थी । लक्ष्मी घबरा गयी । रात के ग्रंधेरे में रास्ता खोजना लक्ष्मी के लिए संभव नहीं था ।

उसने गुड़िया से कहा, "मां, ग्रंधेरा हो गया है । इस ग्रंधेरे में तो मैं रास्ता ही नहीं देख सकूंगी । क्या मैं पेड़ पर चढ़कर रात यहीं काट लूं ?"

"हां बहू हां, रात यहीं काट ले ।"

लक्ष्मी पेड़ पर चढ़ी ग्रौर एक मजबूत डाल पर बैठ गयी । डाल पर बैठे-बैठे उसने चारों ग्रोर निगाह दौड़ाई, पर ग्रंधेरे के मारे कुछ भी नहीं दिखायी दिया । लक्ष्मी को बड़ी चिन्ता होने लगी । सारी रात इसी पेड़ पर बैठे-बैठे काटनी होगी । पर गुड़िया उसके साथ थी । लक्ष्मी को उसका बड़ा सहारा था ।

रात ग्राधी से ऊपर ढल चुकी थी, लक्ष्मी ग्रभी भी पेड़ की डाल पर बैठी थी । ग्रचानक उसे कुछ ग्रावाजें सुनायी पड़ीं । कहीं कुछ लोग ग्रापस में बातें कर रहे थे । उसने नीचे देखा तो तीन ग्रादमी पेड़ की तरफ ग्राते हुए दिखायी पड़े । लक्ष्मी डर गयी कि कहीं वे पेड़ पर चढ़कर उसे न देख लें । परन्तु वे तीनों पेड़ की जड़ के पास ग्राकर, वहीं जमीन पर बैठ गये । उनमें से एक ने बत्ती जलायी । बत्ती के उजाले में तीनों साफ-साफ नजर ग्राने लगे । उन्होंने जमीन पर एक चादर फैलायी ग्रौर एक थैले का सामान उस चादर में उलट दिया । उस सामान में सोना ग्रौर सोने के सिक्के, चांदी ग्रौर चांदी के सिक्के ग्रौर कुछ गहने भी थे । वे तीनों डाकू थे, उन्होंने उस रात जो माल लूटा था उसी का हिस्सा-बांट करने के लिए बरगद के नीचे जमा हुए थे । मगर थोड़ी ही देर में उनके बीच बहस होने लगी । क्योंकि तीनों में से हर एक बड़ा हिस्सा खुद हड़प जाना चाहता था । ग्रापस में बहस करते-करते झगड़ा उठ खड़ा हुग्रा । थोड़ी ही देर में खूब गरमा-गरमी ग्रौर गाली गलौज होने लगी ।

उधर पेड़ पर बैठी लक्ष्मी यह सब देखकर बहुत घबरा गयी। वह डर के मारे कांपने लगी। एक बार तो लगभग गिर ही पड़ी थी। उसने अपनी सास की राय लेने के लिए गुड़िया निकाली। ठीक उसी समय एक डाकू बड़े जोर से चिल्लाया। लक्ष्मी के रोंगटे खड़े हो गये। मारे डर के उसके हाथ से गुड़िया छूट गयी और नीचे जाकर डाकू सरदार के सिर पर जा टकरायी।

"बापरे ! मरा !" डाकू सरदार चिल्लाया।

"हमला ! हम पर हमला हो गया है," दूसरा डाकू बोला।

"भागो," तीसरे ने आवाज लगायी।





ग्रौर तीनों, सारा सोना-चांदी ग्रौर गहने छोड़कर, भाग निकले। पकड़े जाने के भय से वे जितनी तेजी से हो सकता था भागते चले गये।

सवेरा होने तक लक्ष्मी पेड़ पर ही बैठी रही। जब उजाला हुग्रा तो वह नीचे उतरी ग्रौर उतरते ही ग्रपनी गुड़िया खोजने लगी। उसकी गुड़िया सिक्कों के एक ढेर पर गिरी थी। उसने गुड़िया को उठाकर उससे पूछा, "मां, ग्रब मैं क्या करूं? क्या इन चीजों को उठाकर घर ले चलूं?"



"हां बहू हां, ले चल। पर सब की सब चीजें मालिक को लौटा देना।"

लक्ष्मी क्या जाने कि उनका मालिक कौन है? फिर भी उसने सब चीजें बटोरीं ग्रौर डाकुग्रों के ही थैले में डालकर घर ले ग्रायी। ग्रभी उसे घर पहुंचे थोड़ी ही देर हुई थी कि किसी ने घर का दरवाजा खटखटाया। लक्ष्मी डर गयी। उसने सोचा कि कहीं डाकू ग्रपना माल लेने न ग्रा पहुंचे हों। दरवाजे पर फिर खटखटाहट सुनायी पड़ी।

लक्ष्मी ने गुड़िया से पूछा, "मां, क्या मैं दरवाजा खोल दूं?"

"हां बहू हां, क्या पता यही मालिक हो।"

लक्ष्मी ने दरवाजा खोल दिया। देहलीज पर उसका बरसों से बिछुड़ा हुग्रा पति खड़ा था। लक्ष्मी उसे ताकती रह गयी।

"लक्ष्मी, लक्ष्मी!" उसके पति ने कहा, "तुमने मुझे पहचाना नहीं, मैं तुम्हारा पति हूं।"

लक्ष्मी ने ग्रागे बढ़कर ग्रपने पति

के चरण छुए ग्रौर भीतर ग्राने के लिए रास्ता छोड़ दिया।

"मैं तो डर गयी थी," उसने कहा, "मैंने समझा कि शायद कोई ग्रपनी चीजें लेने ग्राया होगा।"

"कैसी चीजें?" उसके पति ने पूछा।

"ग्राइये, ग्राप खुद ही देख लीजिये," लक्ष्मी ने कहा, ग्रौर ग्रपने पति को ग्रन्दर ले जाकर वे सब चीजें दिखायीं जिन्हें वह जंगल से लायी थी।

"यह सब तुम्हें किसने दिया?" उसके पति ने चिल्लाकर कहा, "हूं, तो मेरी बीबी डाकुग्रों से मिली हुई है! मैं ऐसी बीबी की सूरत भी देखना नहीं चाहता। मैं ग्रभी इसीदम वापस जाता हूं।"

"नहीं-नहीं," लक्ष्मी ने कहा, "मुझे छोड़कर मत जाइयेगा। मुझे बहुत कुछ कहना है, पहले सब कुछ ग्रच्छी तरह सुनिये।"

फिर लक्ष्मी ने पिछली शाम ग्रौर जंगल में जो कुछ हुग्रा था, सब कह सुनाया।

सब कुछ सुनकर उसके पति ने कहा, "लक्ष्मी, मेरी ग्रच्छी बीबी, कल शाम मैं वर्षों बाद घर लौटकर ग्रा रहा था। इतने वर्षों में मैंने जो कुछ कमाया था वह सब भी मेरे पास था। रास्ते में ग्रचानक तीन डाकुग्रों ने मुझ पर हमला कर दिया। मैंने बड़ी चीख-पुकार मचायी, पर कोई मदद करने नहीं ग्राया। डाकू मेरा सारा माल-मता छीनकर जंगल को भाग गये। ग्रब घर ग्राकर क्या देखता हूं कि जो कुछ सोना-चांदी, रुपये-गहने मैं तुम्हारे लिए ला रहा था वे सब यहां तुम्हारे पास हैं। ग्रब ये सारी दौलत तुम्हारी है।"

"नहीं," लक्ष्मी ने कहा, "मां जी ने मुझसे कहा था कि ये दौलत मालिक को लौटा देना। ग्राप मालिक हैं, इसलिए ये दौलत ग्रापकी है।"

"सो तो ठीक है," उसके पति ने कहा, "दौलत मेरी जरूर थी। लेकिन ग्रब यह हमारी दौलत है। हम दोनों ही इस दौलत का उपभोग करेंगे। क्योंकि ग्रब हम दोनों एक साथ सुख से रहने वाले हैं।

लक्ष्मी ने ग्रपनी गुड़िया निकाली ग्रौर पूछा, "मां, क्या मैं ग्रपने पति के साथ सुख से रहूं?"

"हां बहू हां, जीवन भर सुख से रह।"